११

राष्ट्रिय-जागरण

भारत की वर्तमान परिस्थितियों एवं समस्याओं पर जब हम विचार करते हैं, तो अतीत और भविष्य के चित्र बरबस मेरी कल्पना की आँखों के समक्ष उभर कर आ जाते हैं। इन चित्रों को वर्तमान के साथ सम्बद्ध किए बिना वर्तमान-दर्शन नितान्त अधूरा रहेगा, भूत और भावी के फ्रेम में मढ़कर ही वर्तमान के चित्र को सम्पूर्ण रूप से देखा जा सकता है।

स्वर्णिम चित्र :

अध्ययन और अनुभव की आँख से जब हम प्राचीन भारत की ओर देखते हैं, तो एक गरिमा-मण्डित स्वर्णिम चित्र हमारे समक्ष उपस्थित हो जाता है। उस चित्र की स्वर्ण-रेखाएँ पुराणों और स्मृतियों के पटल पर अंकित हैं, रामायण और महाभारतकार की तूलिका से सँजोई हुई है। जैन आगमों और अन्य साहित्य में छविमान हैं। बौद्ध त्रिपिटकों में भी उसकी स्वर्णिम-आभा यत्र-तत्र बिखरी हुई है। भारत के अतीत का वह गौरव सिर्फ भारत के लिए ही नहीं, अपितु समग्र विश्व के लिए एक जीवन्त आदर्श था। अपने उज्ज्वल चरित्र और तेजस्वी चिन्तन से उसने एक दिन सम्पूर्ण संसार को प्रभावित किया था। उसी व्यापक प्रभाव का ब्रह्मनाद महर्षि मनु की वाणी से ध्वनित हुआ था—

"एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्र - जन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥"—मनुस्मृति २, २०

"इस देश में जन्म लेने वाले चरित्र-सम्पन्न विद्वानों से भूमण्डल के समस्त मानव अपने-अपने चरित्र-कर्तव्य की शिक्षा ले सकते हैं।"—मनु की यह उक्ति कोई गर्वोक्ति नहीं, अपितु उस युग की भारतीय स्थिति का एक यथार्थ चित्रण है, सही मूल्यांकन है। भारतीय जनता के निर्मल एवं उज्ज्वल चरित्र के प्रति श्रद्धावनत होकर यही बात पुराणकार महर्षि व्यासदेव ने इन शब्दों में दुहराई थी—

"गायन्ति देवाः किल गीतकानि, धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते, भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्॥"
—विष्णु पुराण, २।३।४.

स्वर्ग के देवता भी स्वर्ग में भारत भूमि के गौरव-गीत गाते रहते हैं कि वे देव धन्य हैं, जो यहाँ से मरकर पुनः स्वर्ग और अपवर्ग-मोक्ष के मार्गस्वरूप पवित्र भारतभूमि में जन्म लेते हैं।

भगवान् महावीर के ये वचन कि—'देवता भी भारत जैसे आर्य देश में जन्म लेने के लिए तरसते हैं'—जब स्मृति में आते हैं, तो सोचता हूँ, ये जो बातें कही गई हैं, मात्र आलंकारिक नहीं हैं, कवि की कल्पनाजन्य उड़ानें नहीं हैं, बल्कि सत्य के साक्षात् दृष्टाओं की साक्षात् अनुभूति का स्पष्ट उद्घोष है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इतिहास के उन पृष्ठों को उलटते ही एक विराट् जीवन-दर्शन हमारे सामने आ जाता है। त्याग, स्नेह और सद्भाव की वह सुन्दर तसवीर खिच जाती है, जिसके प्रत्येक रंग में एक आदर्श प्रेरणा और विराटता की मोहक छटा भरी हुई है। त्याग और सेवा की अखण्ड ज्योति जलती हुई प्रतीत होती है।

रामायण में राम का जो चरित्र प्रस्तुत किया गया है, वह भारत की आध्यात्मिक और नैतिक चेतना का सच्चा प्रतिबिम्ब है। राम को जब अपने राज्याभिषेक की सूचना मिलती है, तो उनके चेहरे पर कोई हर्ष-उल्लास नहीं चमकता है और न वनवास की स्थिति आने पर खिन्नता की कोई शिकन ही पड़ती है—

"प्रसन्नतां या न गताऽभिषेकतः,
तथा न मम्ले वनवासदुःखतः।"

राम की यह कितनी ऊँची स्थितप्रज्ञता है, कितनी महानता है कि जिसके सामने राज्यसिंहासन का न्यायप्राप्त अधिकार भी कोई महत्त्व नहीं रखता। जिसके लिए जीवन की भौतिक सुख-सुविधा से भी अधिक मूल्यवान है पिता की आज्ञा, विमाता की मनस्तुष्टि! यह आदर्श एक व्यक्तिविशेष का ही गुण नहीं, बल्कि समूचे भारतीय जीवन-पट पर छाया हुआ है। राम तो राम हैं ही, किन्तु लक्ष्मण भी कुछ कम नहीं है। लक्ष्मण जब राम के वनवास की सूचना पाते हैं, तो वे उसी क्षण महल से निकल पड़ते हैं। नवोढ़ा पत्नी का स्नेह भी उन्हें रोक नहीं सका, राजमहलों का वैभव और सुख राम के साथ वन में जाने के निश्चय को बदल नहीं सका। वे माता सुमित्रा के पास आकर राम के साथ वन में जाने की अनुमति माँगते हैं। और माता का भी कितना विराट् हृदय है, जो अपने प्रिय पुत्र को वन-वन में भटकने से रोकती नहीं, अपितु कहती है—राम के साथ वनवास की तैयारी करने में तुमने इतना बिलम्ब क्यों किया? तुम्हें तत्काल ही राम के साथ चल देना चाहिए था। देखो बेटा, वन में तुम्हारा राम और सीता के साथ कैसा व्यवहार होना चाहिए—

"रामं दशरथं विद्धि, मां विद्धि जनकात्मजाम्,
अयोध्यामटवीं विद्धि, गच्छ पुत्र! यथासुखम्।"
—वाल्मीकि रामायण, ४०।६

—हे वत्स! राम को पिता दशरथ की तरह मानना, सीता को मेरे समान समझना और वन को अयोध्या मानना। राम के साथ वन में जा, देख राम की छाया से भी कभी दूर मत होना।

यह भारतीय जीवन का आदर्श है, जो प्रत्येक भारतीय आत्मा में झलकता हुआ दिखाई देता है। यहाँ परम्परागत अधिकारों को भी ठुकराया जाता है, स्नेह और ममता के बन्धन भी कर्तव्य की धार से काट दिए जाते हैं और एक-दूसरे के लिए समर्पित हो जाते हैं।

महावीर और बुद्ध का युग देखिए जब तरुण महावीर और बुद्ध विशाल राजवैभव, सुन्दरियों का मधुर स्नेह और जीवन की समस्त भौतिक सुविधाओं को ठुकराकर सत्य की खोज में शून्य-वनों एवं दुर्गम-पर्वतों में तपस्या करते घूमते हैं और सत्य की उपलब्धि कर समग्र जनजीवन में प्रसारित करने में लग जाते हैं। उनके पीछे सैकड़ों-हजारों राजकुमार, सामन्त और सामान्य नागरिक श्रमण भिक्षुक बनकर प्रेम और करुणा की अलख जगाते हुए सम्पूर्ण विश्व को प्रेम का सन्देश देते हैं। वे प्रकाश बनकर स्वयं तो दीप्त हैं ही, परन्तु दूर-दूर तक घूम-घूम कर घर-घर में, जन-जन में सत्य ज्ञान-ज्योति का अखंड उजाला फैलाते हैं।

अध्ययन की आँखों से जब हम इस उज्ज्वल अतीत को देखते हैं, तो मन श्रद्धा से भर आता है। भारत के उन आदर्श पुरुषों के प्रति कृतज्ञता से मस्तक झुक जाता है, जिन्होंने स्वयं अमृत प्राप्त किया और जो अमृत मिला, उसे सब ओर बाँटते चले गए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अतीत के इस स्वर्णिम चित्र के समक्ष जब हम वर्तमान भारतीय जीवन का चित्र देखते हैं, तो मन सहसा विश्वास नहीं कर पाता कि क्या यह इसी भारत का चित्र है? कहीं हम धोखा तो नहीं खा रहे हैं? लगता है, इतिहास का वह साक्षात् घटित सत्य आज इतिहास की गाथा बनकर ही रह गया है।

आज का मनुष्य कटी हुई पतंग की तरह दिशा-हीन उड़ता जा रहा है। जिसे न तो कहीं रुकने की फुर्सत है, और न सामने कोई मञ्जिल ही है। अपने क्षुद्र स्वार्थ, दैहिक भोग और हीन मनोग्रन्थियों से वह इस प्रकार ग्रस्त हो गया है कि उसकी विराटता, उसके अतीत आदर्श, उसकी अखण्ड राष्ट्रिय भावना सब कुछ छुई-मुई हो गई है।

भारतीय चिन्तन ने मनुष्य के जिस विराट् रूप की परिकल्पना की थी—**'सहस्र-शीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्'** वह आज कहाँ है? हजारों-हजार मस्तक, हजारों-हजार आँखें और हजारों-हजार चरण मिलकर जो अखण्ड मानवता निर्मित होती थी, जिस अखण्ड राष्ट्रिय-चेतना का विकास होता था, आज उसके दर्शन कहाँ हो रहे हैं? आज की संकीर्ण मनोवृत्तियाँ देखकर मन कुलबुला उठता है। क्या वास्तव में ही मानव इतना क्षुद्र और इतना दीन-हीन होता जा रहा है कि अपने स्वार्थों और अपने कर्तव्यों के आगे पूर्णविराम लगाकर बैठ गया है। आपसे आगे आपके पड़ोसी का भी कुछ स्वार्थ है, कुछ हित है; समाज, देश और राष्ट्र के लिए भी आपका कोई कर्तव्य होता है, इसके लिए भी सोचिए। चिन्तन का द्वार खुला रखिए। आपका चिन्तन, आपका कर्तव्य, आपका हित, आपके लिए केवल बीच के अल्पविराम से अधिक नहीं है, अगर आप उसे ही पूर्णविराम समझ बैठे हैं, इति लगा बैठे हैं, तो यह भयानक भूल है। भारत का दर्शन 'नेति नेति' कहता आया है। इसका अर्थ है कि जितना आप सोचते हैं और जितना आप करते हैं, उतना ही सब कुछ नहीं है, उससे आगे भी अनन्त सत्य है, कर्तव्य के अनन्त क्षेत्र पड़े हैं। किन्तु आज हम यह सन्देश भूलते जा रहे हैं और हर चिन्तन और कर्तव्य के आगे 'इति-इति' लगाते जा रहे हैं। यह क्षुद्रता, यह बौनापन आज राष्ट्र के लिए सबसे बड़ा संकट है।

भ्रष्टाचार किस संस्कृति की उपज है?

मैं देखता हूँ—आजकल कुछ शब्द चल पड़े हैं—'भ्रष्टाचार, बेईमानी, मक्कारी, काला बाजार'—यह सब क्या है? किस संस्कृति की उपज है यह? जिस अमृत कुण्ड की भावधारा से सिंचन पाकर हमारी चेतना और हमारा कर्तव्य क्षेत्र उर्वर बना हुआ था, क्या आज वह धारा सूख गई है? त्याग, सेवा, सौहार्द और समर्पण की फसल जहाँ लहलहाती थी, क्या आज वहाँ स्वार्थ, तोड़फोड़, हिंसा और बात-बात पर विद्रोह की कँटीली झाड़ियाँ ही खड़ी रह गई हैं? देश में आज बिखराव और अराजकता की भावना फैल रही है, इसका कारण क्या है?

मैं जहाँ तक समझ पाया हूँ, इन सब अव्यवस्थाओं और समस्याओं का मूल है—हमारी आदर्श-हीनता। मुद्रा के अवमूल्यन से आर्थिक क्षेत्र में जो उथल-पुथल हुई है, जीवन के क्षेत्र में उससे भी बड़ी और भयानक उथल-पुथल हुई है आदर्शों के अवमूल्यन से। हम अपने आदर्शों से गिर गए हैं, जीवन का मूल्य विघटित हो गया है, राम, कृष्ण, महावीर और बुद्ध के आदर्शों का भी हमने अवमूल्यन कर डाला है। बस, इस अवमूल्यन से ही यह गड़बड़ हुई है, यह अव्यवस्था पैदा हुई है।

महात्मा गाँधी मजबूरी का नाम?

एक बार एक सज्जन से चर्चा चल रही थी। हर बात में वे अपना तकियाकलाम दुहराते जाते थे, 'महाराज! क्या करें, मजबूरी का नाम महात्मा गांधी है।' इसके बाद अन्यत्र भी यह दुर्वाक्य कितनी ही बार सुनने में आया है। मैं समझ नहीं पाया, क्या मतलब हुआ इसका? क्या महात्मा गान्धी एक मजबूरी की उपज थे? गान्धी का दर्शन, जो प्राचीन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भारतीय दर्शन का आधुनिक नवस्फूर्त संस्करण माना जाता है, क्या वह कोई मजबूरी का दर्शन है? भारत की स्वतन्त्रता के लिए किए जाने वाले सत्याग्रह, असहयोग, स्वदेशी आन्दोलन तथा अहिंसा और सत्य के प्रयोग क्या केवल दुर्बलता थी, मजबूरी थी, लाचारी थी? क्या कोई महान् एवं उदात्त आदर्श जैसा कुछ और नहीं था? क्या गाँधीजी की तरह ही महावीर और बुद्ध का त्याग भी एक मजबूरी थी? राम का वनवास तो आखिर किस मजबूरी का समाधान था? वस्तुतः यह मजबूरी हमारे प्राचीन आदर्शों की नहीं, अपितु हमारे वर्तमान स्वार्थ-प्रधान चिन्तन की है, जो आदर्शों के अवमूल्यन से पैदा हुई है।

मनुष्य झूठ बोलता है, बेईमानी करता है और जब उससे कहा जाता है कि ऐसा क्यों करते हो? तो उत्तर मिलता है, क्या करें, मजबूरी है! पेट के लिए यह सब-कुछ करना पड़ता है। अभाव ने सब चौपट कर रखा है। मैं सोचता हूँ यह मजबूरी, यह पेट और अभाव, क्या इतना विराट् हो गया है कि मनुष्य की सहज अन्तश्चेतना को भी निगल जाए? महापुरुषों के प्राचीन आदर्शों को यों डकार जाए? मेरे विचार से मजबूरी और अभाव उतना नहीं है, जितना महसूस किया जा रहा है। अभाव में पीड़ा का रूप उतना नहीं है, जितना स्वार्थ के लिए की जाने वाली अभाव की बहानेबाजी हो रही है।

असहिष्णुता क्यों?

मैं इस सत्य से इन्कार नहीं कर सकता कि देश में आज कुछ हद तक अभावों की स्थिति है। किन्तु उन अभावों के प्रति हममें सहिष्णुता का एवं उनके प्रतिकार के लिए उचित संघर्ष का अभाव भी तो एक बहुत बड़ा अभाव है। पीड़ा और कष्ट कहने के लिए नहीं, सहने के लिए आते हैं। किसी बात को लेकर थोड़ा-सा भी असन्तोष हुआ कि बस, तोड़-फोड़ पर उतारू हो गए। सड़कों पर भीड़ इकट्ठी हो गई, राष्ट्र की सम्पत्ति की होली करने लगे, राष्ट्र-नेताओं के पुतले जलाने लगे—यह सब क्या है? क्या इन तरीकों से अभावों की पूर्ति की जा सकती है? क्या सड़कों पर अभावपूर्ति के फैसले किए जा सकते हैं? ये हमारी पाशविक वृत्तियाँ है, जो असहिष्णुता से जन्म लेती हैं, अविवेक से भड़कती हैं और फिर उद्दाम होकर विनाश-लीला का नृत्य कर उठती है। मैं यह समझ नहीं पाया कि जो सम्पत्ति जलाई जाती है, वह आखिर किसकी है? राष्ट्र की ही है न यह! आप की ही तो है यह! फिर यह विद्रोह किसके साथ किया जा रहा है? अपने ही शरीर को नोंचकर क्या आप अपनी खुजली मिटाना चाहते हैं? यह तो निरी मूर्खता है। इससे समस्या सुलझ नहीं सकती, असन्तोष मिट नहीं सकता और न अभाव एवं अभाव-जन्य आक्रोश ही दूर किया जा सकता है। अभाव और मजबूरी का इलाज सहिष्णुता है। राष्ट्र के अभ्युदय के लिए किए जाने वाले श्रम में योगदान है। असन्तोष का समाधान धैर्य है, और है उचित पुरुषार्थ! आप तो अधीर हो रहे हैं, इतने निष्क्रिय एवं असहिष्णु हो रहे हैं कि कुछ भी बर्दाश्त नहीं कर सकते! यह असहिष्णुता, यह अधैर्य, इतना व्यापक क्यों हो गया है?

राष्ट्रिय-स्वाभिमान की कमी :

आज मनुष्य में राष्ट्रिय स्वाभिमान की कमी हो रही है। राष्ट्रिय-चेतना लुप्त हो रही है। अपने छोटे-से घोंसले के बाहर देखने की व्यापक दृष्टि समाप्त हो रही है। जब तक राष्ट्रीय-स्वाभिमान जागृत नहीं होगा, तबतक कुछ भी सुधार नहीं होगा। घर में, दुकान में या दफ्तर में, कहीं भी आप बैठें, किन्तु राष्ट्रिय-स्वाभिमान के साथ बैठिए। अपने हर कार्य को अपने क्षुद्र हित की दृष्टि से नहीं, राष्ट्र के गौरव की दृष्टि से देखने का प्रयत्न कीजिए। आपके अन्दर और आपके पड़ोसी के अन्दर जब एक ही प्रकार की राष्ट्रिय-चेतना जागृत होगी, तब एक समान अनुभूति होगी और आपके भीतर राष्ट्रिय स्वाभिमान जाग उठेगा।

राष्ट्रिय-स्वतन्त्रता संग्राम के दिनों में समूचे राष्ट्र में अखण्ड राष्ट्रिय-चेतना का एक प्रवाह उमड़ा था। एक लहर उठी थी, जो पूर्व से पश्चिम तक को, उत्तर से दक्षिण तक को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक साथ आन्दोलित कर रही थी। स्वतन्त्रता संग्राम का इतिहास पढ़ने वाले जानते हैं कि उन दिनों किस प्रकार हिन्दू और मुसलमान भाई-भाई की तरह मातृभूमि के लिए अपने जीवन का बलिदान कर रहे थे। उत्तर और दक्षिण मिलकर एक अखंड भारत हो रहे थे। सब लोग एक साथ यातनाएँ झेलते थे और अपने सुख-दुःख के साथ किस प्रकार एकाकार हो कर चल रहे थे। राष्ट्र के लिए अपमान, संकट, यन्त्रणा और फाँसी के फन्दे तक को भी हँसते-हँसते चूम लेते थे। मैं पूछता हूँ क्या आज वैसी यातना और यन्त्रणा के प्रसंग आपके सामने हैं? नहीं! बिलकुल नहीं! जो हैं वे नगण्य हैं और बहुत ही साधारण हैं! फिर क्या बात हुई कि जो व्यक्ति जेलों के सीखचों में भी हँसते रहते थे, वे आज अपने घरों में भी असन्तुष्ट, दीन-हीन, निराश और आक्रोश से भरे हुए हैं। असहिष्णुता की आग से जल रहे हैं! क्या कारण है कि जो राष्ट्र एकजुट होकर एक शक्ति-सम्मन्न विदेशी शासन से अहिंसक लड़ाई लड़ सकता है, वह जीवन के साधारण प्रश्नों पर इस प्रकार टुकड़े-टुकड़े होता जा रहा है? रोता-बिलखता जा रहा है? मेरी समझ में एकमात्र मुख्य कारण यही है कि आज भारतीय जनता में राष्ट्रिय-स्वाभिमान एवं राष्ट्रिय-चेतना का अभाव हो गया है। देश के नवनिर्माण के लिए समूचे राष्ट्र में वह पहले-जैसा संकल्प यदि पुनः जागृत हो उठे, वह जन-चेतना यदि राष्ट्र के मूच्छित हृदयों को पुनः प्रबुद्ध कर सके, तो फिर मजबूरी का नाम महात्मा गाँधी नहीं, बल्कि आदर्शों का नाम महात्मा गाँधी होगा। फिर झोंपड़ी में भी मुस्कराते चेहरे मिलेंगे, अभावों की पीड़ा में भी श्रम की स्फूर्ति चमकती मिलेगी। आज जो व्यक्ति अपने सामाजिक एवं राष्ट्रिय उत्तरदायित्वों को स्वयं स्वीकार न करके फुटबाल की तरह दूसरों की ओर फेंक रहा है, वह फूलमाला की तरह हर्षोल्लास के साथ उनको अपने गले में डालेगा और अपने कर्तव्यों के प्रति प्रतिपद एवं प्रतिपल सचेष्ट होगा।

आशापूर्ण भविष्य :

मैं जीवन में निराशवादी नहीं हूँ। भारत के सुनहले अतीत की भाँति सुनहले भविष्य की तस्वीर भी मैं अपनी कल्पना की आँखों से देख रहा हूँ। देश में आज जो अनुशासन-हीनता और विघटन की स्थिति पैदा हो गई है, आदर्शों के अवमूल्यन से मानव गड़बड़ा गया है, वह स्थिति एकरोज अवश्य बदलेगी। व्यक्ति, समाज तथा राष्ट्र के लिए संक्रांतिकाल में प्रायः अन्धकार के कुछ क्षण आते हैं, अभाव के प्रसंग आते हैं, परन्तु ये क्षण एवं प्रसंग स्थायी नहीं होते। भारत में वह समय आएगा ही, जब शुद्ध राष्ट्रिय-चेतना का शंखनाद गूंजेगा, व्यक्ति-व्यक्ति के भीतर राष्ट्र का गौरव जागेगा, राष्ट्रिय-स्वाभिमान प्रदीप्त होगा। और यह राष्ट्र जिस प्रकार अपने अतीत में गौरव-गरिमा से मंडित रहा है, उसी प्रकार अपने वर्तमान और भविष्य को भी गौरवोज्ज्वल बनाएगा। किन्तु यह तभी सम्भव है, जब कि आपके अन्तर में अखण्ड राष्ट्रिय-चेतना जागृत होगी, कर्तव्य की हुँकार उठेगी, परस्पर सहयोग एवं सद्भाव की ज्योति प्रकाशमान होगी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org